आखर हिंदी पत्रिका; e-ISSN-2583-0597 खंड 6/अंक 1/मार्च 2026
Received: 18/03/2026; Published: 28/03/2026

कविता

बेसुध भीड़

- **प्रो. पुनीता**
विभागाध्यक्षा हिन्दी विभाग
पंडित मोहन लाल एस डी कालेज फार विमेन ,गुरदासपुर (पंजाब)

प्रो. पुनीता , बेसुध भीड़ , आखर हिंदी पत्रिका, **खंड 6/अंक 1/मार्च 2026,** (162-166)

This work is licensed under CC BY-NC 4.0

मैंने देखा वहां एक भीड़ थी

हाँ, वह भीड ही थी

सामुहिकता तो हो ही नहीं सकती

उसके कोई मूल्य नहीं थे, न ही कोई नियम

शायद भीड़ के कोई नियम नहीं होते

वे सब एक दूसरे के समीप थे, एक दूसरे से कंधे से कंधा भिड़ाए खड़े थे

उनमें से कोई नहीं जानता था

कि वे सब मजमा बने क्यों खड़े हैं?

एक का कहना था, जेब कट गई होगी

दूसरे ने कहा एक पागल होगा

इतने में तीसरा बोला टक्कर हो गई होगी

सत्य क्या था?

किसी को ज्ञान न था.......

फिर भी वे एक भीड़ थी,

सभी बावले, सभी उतावले

पहले भी देखी हैं मैंने ऐसी भीड़े

कितनी ही भीड़े

आंतकित भीड़े, अनैतिक , नियम विहिन भीड़े

फिर सोचा, कि भीड़ को चीर आगे बढ़ूँ

पर आंतरिक द्वंद्व को न रोक पाई

बढ़ चली भीड़ की ओर

फिर जो न सोचा था वो हो गया

आंतकित मेरा जहन हो गया

रूह तक कांप गई थी मेरी

आंखे स्तब्ध रह गई थी मेरी

देखा, एक अधमरी लाश वहां पड़ी थी,

जैसे ठहरी हुई एक सदी खड़ी थी,

वो एक छोटी सी बच्ची थी,

वह मात्र दस-बारह वर्ष की बच्ची थी,

उस बच्ची पर अत्याचार यह कैसा हुआ?

उसपर इतना जुल्म हुआ

उसपर अन्याय अतिसार हुआ

उन दरिदों ने खूब कहर बरसाया था

इंसानियत को हवस की आग में जलाया था

नोच उसको उन्होंने हैवानियत पर से पर्दा उठाया था

अपनी दरिंदगी का अनैतिक नाच दिखाया था.

मैं चीख उठी, मैं पुकार उठी

मैं आक्रोश में बोल उठी

टुकडे-टुकड़े में बिखरी गई थी आबरू

न जीने का चाहत न मरने की जुस्तजु

बन गया इस भीड में तमाशा

समाज से रखे न कोई आशा

वो गुडिया थी

'फिर एक गुडिया वहशी नज़रों की हो गई शिकार

फिर देश, समाज और इंसानियत हुई शर्मसार

" फिर कोई जिस्म का भूखा मोहब्बत के लिबास में आया था।

पहचानती कैसे उसे उसने चेहरे पर चेहरा लगाया था,

घर में सबसे लाडली थी वो

इकलौती थी वो, हिन्दोस्तान को बेटी थी वो

क्या बीतेगा उस बाप पर?

जो अपनी लाडली को इस हालात में पाएगा

उसका सारा जीवन कौडी के भाव बिक जाएगा

जिसने कहा होगा.......

तू उड़, मैं तुझे उड़ना सिखाऊँगा

तू पढ मैं तुझे पढ़ाऊंगा

तेरे हर ख्वाब पूरा करके दिखाऊगां

पिता तो चाहता था उसको ऊंची उड़ान को

न कि धरती पर पड़ी इस बेसुध अनजान को

अंधेरी रात का वो काला साया

उस बाप को कैसे भूल पाएगा

मैं सिमटी हुई यह सोच रही

पाप की हर हद पार की उन दरिंदों ने

जानवरों जैसा व्यवहार किया उन खूनी परिंदों ने

उस माँ के दर्द को कया कोई समझ पाएगा

माँ- बाप की गुड़िया को फिर खेलना कौन सिखाएगा..

अचानक एक आवाज भीड़ से आती है,

मेरी चेतना वेदना को जगाती है,

उठाओ ,इसे हस्पताल पहुंचाना है,

इस जिन्दा लाश को ठिकाने लगाना है,

अगला इस का केस दर्ज करवाना है,

आह..

मैंने पहले भी देखी है ऐसी भीड़

पर आज न जाने क्यों?

मेरे मन को इतना उधेड़ा है

मैं चीख उठी,मैं पुकार उठी

नहीं नहीं मेरा देश

किसी मदारी के इशारों पर नाचने वाला बेदर्द नहीं हो सकता

जहां नारी अस्मिता को एक खेल बनाया जाएगा

दरिंदों पर रहम कमाया जाएगा

मेरा देश भीड़ नहीं हो सकता

मेरा देश अपनी सामुहिकता नहीं खो सकता

मैं आवाज़ बनूंगी इस भीड़ की

मैं आगाज़ करूंगी, महायुद्ध का

नहीं नहीं मैं अपने देश को भीड़ में बदलने नहीं दूंगी

मैं अपने देश को बेसुध भीड़ में बदलने नहीं दूगीं..

****